मोहन राकेश के उपन्यास और पारिवारिक सम्बन्ध

डॉ0 वीरेन्द सिंह यादव,

एसोसिएट प्रोफेसर–हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग,
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय,लखनऊ

मोहन राकेश के उपन्यासों का मूलाधार दाम्पत्य–जीवन है। मूलाधार इस अर्थ में कि उनके तीनों उपन्यासों की तमाम अवान्तर कथाएं और लगभग सभी प्रश्न दाम्पत्य जीवन के ही किसी न किसी रूप या पक्ष से उद्भूत है। आधुनिक, उन्नति अहं, आत्म केन्द्रित, बुद्धिजीवी, महानगर–निवासी स्त्री–पुरुष जो परम्परा से चले आये सम्बन्धों में आबद्ध हैं। मोहन राकेश के उपन्यासों में उन सम्बन्धों की जांच–पड़ताल या छानबीन करते अथवा उन सम्बन्धों के संदर्भ में निजी व्यक्ति जीवन की सार्थकता तलाशते या निजी–व्यक्ति जीवन के संदर्भ में उन सम्बन्धों की अर्थवत्ता खोजते हुये दिखाई देते हैं इसलिये उन्होंने इन पारम्परिक मानवीय सम्बन्धों में सर्वप्रथम पति–पत्नी सम्बन्ध का ही अपने उपन्यासों की आधारिक विषय–वस्तु बनाया है; शायद वह इसलिये कि मानव–समाज का यही सम्बन्ध सबसे अधिक गहन व्यापक और प्रमुख है कि अन्य सम्बन्ध उपसम्बन्ध इसी से जन्म लेते हैं इसके अतिरिक्त दाम्पत्य जीवन को ही अपने उपन्यासों की विषयवस्तु चुनने के पीछे राकेश जी के सामने आधुनिक मानव–समाज का वह साम्प्रतिक रूप भी हो सकता है जिसमें विभिन्न सम्बन्धों से भरे पुराने, बड़े और सम्मिलित परिवार टूटते जा रहे हैं तथा परिवार नाम की संस्था पति–पत्नी (और एक या दो बच्चे) तक ही सीमित होती जा रही है। इस तरह पति–पत्नी के जीवन–सम्बन्धों को अपनी औपन्यासिक–कृतियों की आधारभूत विषय–वस्तु बनाकर मोहन राकेश मानों आज के मानव–समाज के मूल सम्बन्ध, उसकी मूल संस्था को उद्घाटित और विश्लेषित करना चाहते हैं।

मोहन राकेश ने 'अंधेरे बंद कमरे' की भूमिका में रचना के कथ्य की ओर संकेत करते हुये हरबंश और नीलिमा के अंतर्द्वन्द्व की कहानी (भी) कहा है। प्रश्न यह उठता है कि अंतर्द्वन्द्व क्यों ? और कैसा ? चली आयी भारतीय समाज व्यवस्था के अनुसार तो 'अर्धांगिनी' और 'जीवन संगिनी' 'पत्नी तथा भर्ता' और परमेश्वर पति के मध्य किसी द्वन्द्व का स्थान ही नहीं है। 'पति की अनुयायिनी' पत्नी–पति के प्रति तथा 'योषिता और पोषिता' पत्नी के प्रति भला द्वन्द्व की स्थिति में कैसे हो सकता है ? पारंपरिक समाज और उसके दर्पण पहले के साहित्य में ऐसा होता भी नहीं था। या होते हुये भी हमारी पारंपरिक दृष्टि उसे स्वीकार नहीं करती थी; कहीं–कहीं आज भी नहीं करती। लेकिन, जोर देकर कहने की आवश्यकता नहीं कि यह दृष्टि अधूरी और नकारात्मक थी। यह दृष्टि पति और पत्नी को एक 'व्यक्ति' न मानकर उनकी अस्मिता को नकारती हुई उनकी वास्तविकता को भी झुठलाती थी। ऐसी स्थिति में जब आज

का कथाकार पति और पत्नी के मध्य जैसे ही द्वन्द्व की दशा को स्वीकार करता है, उसी क्षण वह पारंपरिक समाज तथा पुरानी दृष्टि को एक झटके से निरस्त कर केवल समाज के बदले हुये आधुनिक रूप को ही स्वीकार नहीं करता अपितु पति और पत्नी के प्रथक–प्रथक स्वतन्त्र अस्तित्व को भी स्वीकृति प्रदान करता है। आज पति और पत्नी एक साथ रहते हुये भी, आसंगबद्ध होते हुये भी एक–दूसरे के लिये अपने–अपने अहं के विलयन हेतु तैयार नहीं है। इसका एक मात्र कारण है अहं का घोषित स्वीकार तथा व्यक्ति की स्वतंत्र सत्ता की स्थापना। अपने अहं की रक्षा और स्वतंत्र व्यक्ति की इस स्थापना की धारणा ही पति और पत्नी के मध्य द्वन्द्व को जन्म देती है।

'अंधेरे बन्द कमरे' की ''नीलिमा इब्सन के 'ए डॉल्स हाउस' की नोरा की तरह अपने लिये पति को सोचने का समस्त अधिकार देकर छुट्टी पा लेना नहीं चाहती।''[1] जबकि उसका पति ''हरबंश ..... उसमें वही आदिम (पारंपरिक) भावना कार्य कर रही है कि वह पति होने के नाते नीलिमा का रक्षक, निर्देशक और नियंता है। वह चाहता है कि नीलिमा आर्थिक या शारीरिक कारणों से ही नहीं, अपनी व्यक्तिगत पूर्णता और सार्थकता के लिये भी उसी पर आश्रित रहे–न सही उस पर, उसके मूल्य–दर्शन पर ही।''[2] बस, मूल द्वन्द्व यही है। मोहन राकेश के 'अंधेरे बंद कमरे' में हरबंश और नीलिमा नामक पति–पत्नी के दाम्पत्य जीवन के बहाने आधुनिक समाज के ''उस औसत दाम्पत्य जीवन की कहानी है जो ऊपर से तो ईष्या की हद तक सुखी और संतुलित दिखता है, लेकिन जिसके भीतर एक अजब कुहासा, घुटन और 'कॅआस' बसा हुआ है।''[3] इसमें सन्देह नहीं कि मोहन राकेश ने अपने इस उपन्यास में विवाह की संस्था और उसके दोनों कर्ताओं–पति और पत्नी–की आंतरिक पर्तों को उधेड़कर दाम्पत्य–सम्बन्धों के जो बारीक–से–बारीक रोयें–रेशे प्रस्तुत किये हैं वे कथाकार की अपनी क्षमता के तो प्रमाण हैं ही साथ ही, इस प्राचीन सामाजिक संस्था के प्रति कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न भी उठाते हैं कि मानव–समाज के भावी रूप के हित में जिनका समाधान भी अपेक्षित है। पूरे उपन्यास में पृष्ठ दर पृष्ठ फैले हरबंश और नीलिमा के आपसी विवाद, प्रायः नित्य ही उनका छोटी–छोटी बातों पर आपस में उलझ जाना, दोनों का ही स्वयं को सही सिद्ध कर पाने की मानसिक तृप्ति के लिये मधुसूदन जैसे किसी तीसरे साक्षी की शरण में जाना, रोज के चाहे–अनचाहे विवादों के कारण दोनों को स्वयं और जीवन में बढ़ती हुई अरुचि, ऊपर के तमाम विवादों और तानों–झगड़ों के बावजूद दोनों की यह प्रच्छन्न कोशिश कि सम्बन्धों का आंतरिक सूत्र अनटूटा बना रहे, बार–बार एक दूसरे से भागना और फिर लौट कर मिलना आदि स्थितियां और उनका विशद चित्रण अंततः पाठक को विवश कर देता है कि वह दाम्पत्य जीवन की इन भीतरी असंगतियों से दो–चार होने पर युग युगों से चली आयी विवाह नाम की इन सामाजिक संस्था की सार्थकता के बारे में एक बार फिर नये सिरे से सोचे। यह सत्य है कि हरबंश और नीलिमा के दाम्पत्य जीवन से साक्षात्कार करता पाठक एक बार तो पति–पत्नी अभिधानक समान–व्यवस्था के इन मूलाधारों के प्रति न केवल शंकाकुल हो उठता है, अपितु घबरा उठता है। समाज के इस आधारिक सम्बन्ध के प्रति सहसा

उसका पारंपरिक विश्वास विचलित हो उठता है और इस दृष्टि से लगता है कि मोहन राकेश ने अपना रचना–हेतु पूर्ण सफलता के साथ प्राप्त किया है।

लेकिन, थोड़ी और गहरी तटस्थ दृष्टि से देखने पर अर्थात लेखक द्वारा आयोजित स्थिति–परिस्थितियों का सूक्ष्म विश्लेषण करने पर सहसा ही ऐसा ही प्रतीत होता है कि हरबंश और नीलिमा का यह विवाद वास्तविक नहीं, बल्कि जान बूझकर अकारण खड़ा किया हुआ विवाद है। निरपेक्ष विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि दाम्पत्य जीवन के संबंध में प्रस्तुत हरबंश और नीलिमा (अर्थात लेखक) की ये सारी प्रश्न वाचक मुद्राएं सतही और वायवीय हैं। इस दाम्पत्ति के तमाम विवादों, समूचे तनाव और सम्पूर्ण द्वन्द्व के पीछे कोई भी ठोस और उचित कारण खोज पाना पाठक के लिये संभव प्रतीत नहीं होता। ..... हरबंश और नीलिमा के द्वन्द्व में से कोई शारीरिक रूप से अक्षम है ? नहीं। क्या उनके पारस्परिक दाम्पत्य सम्बन्धों में किसी अन्य व्यक्ति के कारण कोई दरार है ? नहीं। ..... आशय यह कि आर्थिक, शारीरिक, सामाजिक, नैतिक मानसिक आदि किसी भी दृष्टि से कोई भी निश्चित कारण नहीं है जिसे उनके द्वन्द्व के लिये मूलतः रेखांकित किया जा सके। तब फिर द्वन्द्व क्यों है ? बार–बार परस्पर विरोधी बातें और हरकतें करते समय इस दंपति के द्वन्द्व का कोई भी यथार्थ, निश्चित और औचित्यपूर्ण कारण अपने इस वृहत और बहुचर्चित उपन्यास में मोहन राकेश नहीं दे सके हैं।

ज्ञानोदय 'खुले और रोशन कमरे के सवाल' नामक शीर्षक के अन्तर्गत सुधा अरोड़ा ने मोहन राकेश से 'अंधेरे बन्द कमरे' उपन्यास के बारे में कुछ प्रश्न पूछे थे। हरबंश का चरित्र एक विचित्र या कहा जाय अटपटा चरित्र है। सामान्यतः पाठक उसे जितना क्रियाशील–हर स्थिति पर प्रतिक्रिया करने वाला पाता है वस्तुतः वह उतना सक्रिय है नहीं। और उसकी यह दृश्य सक्रियता तब व्यर्थ प्रतीत होने लगती है जब पाठक सोचता है ''हरबंश के टूटने का स्पष्ट कारण क्या है ? नीलिमा ? या नीलिमा की उसकी पत्नी होना ? या वैवाहिक बंधन ? या नीलिमा को न समझने की असमर्थता या अपनी दुर्बलता या फिर शुक्ला के प्रति एक अस्पष्ट–सा आकर्षण।''[4] और यह सत्य भी है कि क्यों तो हरबंश लंदन जाता है; यदि 'नीलिमा से बचने के लिये तो फिर क्यों वहाँ से पत्र पर पत्र लिखकर नीलिमा को बुलाता है ? जब वह नहीं चाहता कि नीलिमा अपने नृत्य का सार्वजनिक प्रदर्शन करे तो क्यों–ऊपरी ही सही वह उसको सहयोग देता है ? जब नीलिमा उसका घर छोड़कर चली जाती है तो एक 'अंधेरे बंद कमरे' में अकेले शराब पीने के अतिरिक्त वह क्या ठोस कार्यवाही करता है ? और जब नीलिमा लौट आती है तब क्या करता है ? वह क्यों नहीं स्पष्ट करता कि शुक्ला के प्रति उसका क्या स्टैंड है ? ऐसे अनेक प्रश्न जो हरबंश के चरित्र को अविश्वसनीयता प्रदान करते हैं उपन्यास में अनुत्तरित ही रह गये हैं कि जिनके कारण हरबंश भी मूलतः एक आरोपित निर्मित चरित्र प्रमाणित होता है।

न्याय नहीं होगा यदि हरबंश के चरित्र के सम्बन्ध में उठाये गये इन प्रश्नों के समाधान हेतु उपन्यासकार मोहन राकेश के शब्द (जब उपलब्ध हैं तो) उद्धत न किये जायें। 'ज्ञानोदय' के जुलाई 65 अंक

में सुधा अरोड़ा के प्रश्नों के उत्तर में राकेश लिखते हैं, ''हरबंश ..... उसका अंतर्द्वन्द्व किन्हीं मूल्यों को लेकर है जबकि नीलिमा का अंतर्द्वन्द्व मुख्य रूप से उपलब्धि की खोज पर आश्रित है। ..... वह टूटता है क्योंकि वह नीलिमा को उपलब्धि से हटकर मूल्यों के स्तर पर जीना सिखाना चाहता है और नहीं सिखा पाता। ..... वह टूटने से बचने के लिये नीलिमा से दूर भागता है, मगर अंदर के रेशों से वह इस तरह उससे जुड़ा हुआ है कि उससे अलग होकर वह किसी भी तरह नये सिरे से जिंदगी शुरू नहीं कर पाता। ..... हरबंश को नीलिमा के 'बनने' से चिढ़ नहीं है (जैसा कि नीलिमा भी कई बार कहती है), बल्कि उस रास्ते के 'बनने' से चिढ़ है जिसे वह अपनी जिंदगी में अपना रही है।''[5] सुधा अरोड़ा द्वारा और कुछ प्रश्नों का उत्तर देते हुये स्वयं मोहन राकेश ने लिखा है ..... ''उपन्यास का सम्बन्ध आज के यथार्थ से है। यह यथार्थ एक गतिरोध है–मध्यवर्ग के दाम्पत्य सम्बन्धों में आया एक गतिरोध। हरबंश और नीलिमा इस गतिरोध में रहकर छटपटाते हैं पर इससे उबर नहीं पाते। ..... आरम्भ से अन्त तक वे तनाव और निष्फल संघर्ष की स्थिति में जीते हैं। सारी कोशिशों के बावजूद जहाँ के तहाँ बने रहना उनकी अनिवार्य स्थिति है–स्थिति, नियति नहीं।''[6]

मोहन राकेश के दूसरे उपन्यास 'न आने वाला कल' का मूल कथ्य तो कुछ और ही है, लेकिन उसमें भी मनोज और शोभा के दाम्पत्य जीवन का काफी संक्षिप्त लेकिन बहुत ही संश्लिष्ट चित्र लेखक ने प्रस्तुत किया है। सात साल विवाहित रहने के बाद शोभा की दूसरी शादी मनोज से होती है, और मनोज ने अपनी जिंदगी के पैंतीस लंबे वर्ष अकेले रहकर गुजारने के बाद यह पहली बार शादी की है और अब उन दोनों की स्थिति क्या है (मनोज के शब्दों में)–....''उसकी (शोभा की) नजर में मैं अब भी एक अकेला आदमी था, जिसका घर उसे संभालना पड़ रहा था जबकि मेरे लिये वह किसी दूसरे की पत्नी थी, जिसके घर में मैं एक बेतुके मेहमान की तरह टिका था।''[7] न केवल इतना, बल्कि यह भी कि,''..... एक दूसरे की बढ़ती पहचान हमारे अंदर एक औपचारिकता में ढलती गयी थी। यह जान लेने के बाद कि न तो हम अपनी–अपनी हदें तोड़ सकते हैं और न ही एक–दूसरे की हदबन्दी को पार कर सकते हैं, हमने एक युद्ध–विराम में जीना शुरू कर दिया था।''[8]

'न आने वाला कल' में चूँकि लेखक ने रचना के मूल कथ्य के रूप में मनोज द्वारा अपनी नौकरी से त्यागपत्र देने तथा उस पर उसके सहयोगियों की प्रतिक्रिया को मुख्य प्रतिपाद्य बनाया है अतः मनोज और शोभा का दाम्पत्य–जीवन गौण स्थिति में चला गया है। फिर भी इस उपन्यास में मोहन राकेश ने दो वयस्क स्त्री–पुरुषों के निजी पति–पत्नी सम्बन्धों को बहुत स्पष्ट और संश्लिष्ट रूप में प्रस्तुत किया है। पैंतीस वर्ष की वय तक के अकेलेपन से ऊब कर मनोज ने शोभा से शादी तो कर ली लेकिन अब स्थिति है कि (मनोज के शब्दों में) ''अपनी ही इच्छा और जिम्मेदारी से हम लोगों ने अपने लिये एक परिस्थिति खड़ी कर ली थी, जिससे उबरने का उपाय दोनों को नहीं आता था। इसके बाद साथ रह सकना लगभग असम्भव था, पर सम्बन्ध विच्छेद की बात दोनों अपने–अपने कारणों से जबान पर नहीं ला पाते थे। शोभा के लिये प्रश्न था विरोधी परिस्थितियों में

लिये गये अपने निर्णय का मान रखने का, मेरे लिये पहले की बनी अपनी गलत तस्वीर को सही साबित न होने देने का।''9

आशय यह है कि मनोज और शोभा भी 'अंधेरे बंद कमरे' के हरबंश और नीलिमा की भाँति अकारण के संकट से ग्रस्त हैं। अपने–अपने अहं की मीनार में कैद दोनों उसे सुरक्षित बनाये रखने के प्रयत्नों में अपने जीवन की सुख–सुविधाओं का बलिदान कर रहे हैं। किसी अन्य पुरुष के साथ सात–वर्ष दाम्पत्य जीवन व्यतीत कर चुकने वाली शोभा मनोज नाम के इस दूसरे पुरुष की पत्नी बनकर स्वयं को इसके अनुरूप बदलने के लिये कतई तैयार नहीं है और दूसरी ओर मनोज है, जो पुरुष होने के नाते यह कतई गवारा नहीं करता कि वह एक स्त्री के लिये स्वयं को बदले। अपने–अपने अहं के चौखटों में कैद दोनों विच्छिन्न भी नहीं होते; क्योंकि विच्छेद के लिये प्रवर्तन करने वाले को अपना अहं टूटता प्रतीत होता है। ऐसी स्थिति में मानसिक पीड़ा और द्वन्द्व सहते रहने के अतिरिक्त दोनों के सामने कोई अन्य रास्ता नहीं है। लेकिन फिर वही प्रश्न उठता है कि क्या इन दोनों की यह स्थिति और इसका कारण यथार्थाधारित है ? क्या ये दोनों सुखी दाम्पत्य जीवन व्यतीत करना चाहते हैं ? निश्चित रूप से नहीं यदि वे ऐसा चाहते तो दोनों या दोनों में से कोई एक स्वयम् को दूसरे के अनुकूल बदल या ढाल सकता है। लेकिन चूंकि ये दोनों चरित्र ही लेखक की मानसिक कृतियां हैं, इसलिये इनका जीवन और द्वन्द्व भी मानसिक ही है, वास्तविक नहीं। वास्तविक जीवन जीते यथार्थ जगत के दम्पत्ति एक–दूसरे के अनुरूप जीवन में न जाने कितने समायोजन करते रहते हैं। इस प्रकार देखा जाये तो 'न आने वाला कल' में अनेक पात्र–थोड़ी–थोड़ी देर के लिये आते हैं और जीवन के प्रति असन्तोष और ऊब व्यक्त करते हैं। शारदा–कोहली, टोनी व्हिसलर, चेरी लारा, मिसेज ज्याफ्रे, रोज ब्राइट, मिसेज दारूवाला पादरी, माली क्राउन, बॉनी, फकीरें, काशनी और पादरी ये सारे पात्र एक पहाड़ी स्कूल की जिन्दगी के साथ जीते हुये भी इतने अकेले हैं कि अपने सिवा और किसी के अकेलेपन को महसूस तक नहीं कर पाते। अपने–अपने काम से अपने परिवेश से वे बेजार हैं लेकिन वे अपने परिवेश से इस प्रकार अंधे हैं कि उससे छिटककर दूर भी नहीं हो पाते अर्थात वे अपने आप में विवश हो जाते हैं। नायक मनोज आदि से अन्त कि अनिश्यात्मक स्थिति में रहता है। वह छुटकारा पाना चाहता था परन्तु किससे ? नौकरी से पत्नी से ? किसी चीज से ? वह स्वयं नहीं जानता कि उसने त्यागपत्र क्यों दिया ?

मोहन राकेश के प्रथम दो उपन्यासों की भांति ही तीसरे उपन्यास 'अन्तराल' में भी समस्या ग्रस्त दाम्पत्य जीवन का चित्रण है, बल्कि कुछ ज्यादा ही है लेकिन यहां भी समस्या का उत्स वही मानसिक है, वास्तविक जीवन जगत से परे। 'अंधेरे बंद कमरे' के हरबंश और नीलिमा में अहं और विचारों भावनाओं का टकराव है, 'न आने वाला कल' की शोभा मनोज को अपने अनुरूप नहीं ढाल पाती तो 'अंतराल की श्यामा को भी अपने पति से यही शिकायत है कि वह उसके अहं की लगातार उपेक्षा करता हुआ, अपने व्यक्तित्व को उस पर बलात आरोपित करता हुआ डेढ़ वर्ष तक दाम्पत्य जीवन बिताकर अचानक संसार से चला गया।

श्यामा–कुमार के सम्पर्क में जब आती है तब उसके पति के मरे हुये तीन वर्ष गुजर गये हैं ऐसी परिस्थितियों में एक बार फिर उसके भीतर की नारी, पुरुष प्राप्ति की आकांक्षा से भर उठती है। श्यामा ने देव को पति रूप में प्राप्त कर अपने नारी–जीवन को सर्वांशतः उसी एक पुरुष में विसर्जित कर देना चाहा था, लेकिन दो–एक जागतिक तथा अधिसंख्य मानसिक असंगतियों के कारण ऐसा नहीं हो सका। देव के श्यामा के प्रति लगातार के विरक्ति पूर्ण व्यवहार ने श्यामा को उसके प्रति एक विद्रोह भरे क्षोभ से भर दिया। अचानक देव के देहांत ने जैसे उससे श्यामा के सम्बन्धों को वहीं 'स्थिर' कर दिया है। श्यामा अब न तो अपने क्षोभ को ही व्यक्त कर सकती है और न देव की आंतरिक भावनाओं को ही जान सकती है और अब शेष जीवन उसे उसी क्षोभ की मनः स्थिति को ढोते हुये व्यतीत करना है। यही कारण है कि श्यामा अब भी देव के व्यक्तित्व के प्रभाव से मुक्त नहीं है। उसे लगता है कि देव जीवित अवस्था में तो उसके साथ रहकर लगातार उसकी अपेक्षा करता रहा है और अब अचानक मरकर तो जैसे उसने श्यामा को आखिरी बार भी एक बड़ा धोखा देकर पराजित कर दिया। अब तो उससे अपने विद्रोह को प्रकट करने की भी कोई सम्भावना नहीं रही। 'अंतराल' के तीनों खण्डों में विविध प्रसंगों में उल्लिखित श्यामा के विचार उसकी उपर्युक्त बाह्यांतरिक दशा को ही व्यक्त करते है।

सांस्कारिक असंगति और अहं के टकराव से उत्पन्न असामंजस्य से भरे देव और श्यामा के दाम्पत्य–जीवन के अतिरिक्त 'अंतराल' में दाम्पत्य जीवन के दो अन्य रूप भी अंकित किये गये है। पहला है 'श्यामा के जीजा प्रो. मल्होत्रा का जो अपनी पत्नी–बच्चों के साथ रहते हुए भी लगातार अन्य स्त्रियों और लड़कियों से यौन–तृप्ति करने की घात में बने रहते है।''[10] और दूसरा है कुमार का जो बंबई आकर लगातार के अकेलेपन से ऊबकर किसी परिचित द्वारा बताई गयी एक स्त्री से विवाह तो कर लेता है लेकिन ''छः माह से अधिक उसका विवाहित जीवन नहीं चल पाता। परिस्थिति विशेष से विवश हुई वह स्त्री कुमार से विवाह तो कर लेती है, लेकिन जैसे ही स्थितियां उसके अनुकूल होती हैं, वह उसे छोड़कर चली जाती है।''[11] दाम्पत्य जीवन के ये दोनों ही रूप विशेष उल्लेख्य नहीं हैं। उपन्यासकार ने भी इन्हें अधिक महत्व नहीं दिया है तथा यों भी ये दोनों ही रूप सामान्य जीवन–जगत में आये दिन होने वाली घटनाओं और रहने वाले व्यक्तियों के उदाहरण मात्र ही है। हाँ इतना अवश्य है कि इनमें से कुमार वाले प्रसंग के द्वारा कुमार के दाम्पत्य जीवन के बारे में विचारों का परिचय अवश्य मिल जाता है। श्यामा जब पूछती है कि उस स्त्री के साथ उसने कैसा अनुभव किया तो कुमार प्रकारांतर से विवाहित जीवन के बारे में ही अपने विचार प्रकट करता है, मुझे ''सिवाय शरीर के कुछ नहीं मिला। उसे भी मुझसे केवल इतना ही मिला होगा। ..... और जो था, वह था केवल एक डर। बात अपने तक रहे किसी को पता न चले। जितना सड़ना है, अंदर ही अंदर सड़ो। उसी सड़ांध और जहर से बच्चे पैदा करो और उन्हें भी उसी ढंग से जीने की शिक्षा दो। अपनी स्वाभाविकता के साथ विश्वासघात करो और ऐसा करने की परम्परा को बनाये रखो।''[12]

कुमार अस्तित्ववादी दर्शन से प्रभावित लगता है उसे अपने अहं के सिवाय कुछ नजर ही नहीं आता है वह दूसरों की भावनाओं का कुछ ख्याल ही नहीं करता है क्योंकि विवाहित जीवन के बारे में कुमार के ये विचार स्वयं ही स्पष्ट कर देते हैं कि दाम्पत्य जीवन केवल शरीर सुख और संतानोत्पत्ति का ही नाम नहीं है, उसमें मानसिक सामंजस्य और भावात्मक प्रेम भी जरूरी है। यहाँ आकर जैसे कुमार और श्यामा के विचार एक बिन्दु पर मिल जाते है। श्यामा की पीड़ा और समस्या भी यही है कि देव से न तो उसकी मानसिक संगति ही बैठ सकी और न वह उससे हार्दिक स्नेह ही पा सकी। शोभा और मनोज के विच्छेद के पीछे भी उनका मानसिक आसामांजस्य ही है और यही आन्तरिक असंगति हरबंश और नीलिमा के दाम्पत्य–जीवन की प्रमुख समस्या है।

आशय यह कि मोहन राकेश के उपन्यासों में वर्णित दाम्पत्य जीवन समस्या ग्रस्त दाम्पत्य–जीवन है और उसकी एक मात्र समस्या है पति–पत्नी का मानसिक असामांजस्य, ऐसा मानसिक असामंजस्य जिसके पीछे कोई यथार्थ भौतिक कारण नहीं है।

सहायक सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ज्ञानोदय, जनवरी, 1966 अंक–धनंजय वर्मा, पृ. 120
2. ज्ञानोदय, जनवरी, 1966 अंक–धनंजय वर्मा, पृ. 121
3. ज्ञानोदय, जनवरी, 1966 अंक–धनंजय वर्मा, पृ. 120
4. ज्ञानोदय, खुले और रोशन कमरे के सवाल–सुधा अरोड़ा, पृ. 13
5. ज्ञानोदय, जुलाई, 1965 अंक–मोहन राकेश, पृ. 112
6. ज्ञानोदय, जुलाई, 1965 अंक
7. न आने वाला कल, पृ. 15
8. न आने वाला कल, पृ. 15
9. न आने वाला कल, पृ. 22
10. अन्तराल, पृ. 30
11. अन्तराल, पृ. 202–4
12. अन्तराल, पृ. 201, 2

Copyright © 2017, Dr. Virendra Singh Yadav. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.